सत्यनारायण की सच्ची कथा

सत्य-नारायण की सच्ची कथा

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
आबू पर्वत (राजस्थान)

लेखक :
ब्र.कु. जगदीशचन्द्र

प्रकाशक एवं मुद्रक:
साहित्य विभाग,
ओमशान्ति प्रेस, ज्ञानामृत भवन,
शान्तिवन, आबू रोड – 307 510 (राजस्थान)
☎ – 228126, 228125

पुस्तक मिलने का पता:
साहित्य विभाग,
पाण्डव भवन, आबू पर्वत – 307 501 (राजस्थान)
☎ – 238361 से 238268

कापी राइट:
प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय,
पाण्डव भवन, आबू पर्वत – 307 501 (राजस्थान)

दो शब्द

भारतीय संस्कृति में व्रतों, कथाओं, पर्वों और तीर्थों का विशेष महत्त्व है। मानव जीवन को दिव्यगुण सम्पन्न तथा पवित्र और निर्विकार बना कर जीवन में उमंग भरना ही इन सांस्कृतिक गतिविधियों का एक मात्र उद्देश्य है। समय के निश्चित क्रम में आने वाले इन पर्वों, कथाओं और व्रतों के पीछे एक गहन आध्यात्मिक रहस्य छिपा होता है। काल की लम्बी अवधि की धूल से वे गहन आध्यात्मिक रहस्य धूमिल तो हो गए हैं, पर पूर्णत: मिटे नहीं हैं। सत्यनारायण की कथा भी भारत की प्रसिद्ध कथाओं में से एक सुप्रसिद्ध कथा है। इस कथा का वास्तविक सार इस सत्य से सम्बद्ध है कि भगवान स्वयं ज्ञान देकर 'नर को श्री नारायण और नारी को श्री लक्ष्मी' का पद प्रदान करते हैं। इस अर्थ में परमपिता परमात्मा शिव द्वारा, कलियुग के अन्त और सतयुग की आदि के संगमयुग पर सुनाई जाने वाली सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त की ज्ञान-कथा ही– 'सच्ची सत्यनारायण की कथा है और मन की कुवृत्तियों को नियन्त्रित करना ही सच्चे अर्थों में व्रत है।' अभी महाविनाश भी अपनी पूर्ण तैयारियों सहित सामने खड़ा है। अवतरित भगवान को पहचानने में लापरवाही और प्रमाद करने वाली आत्माओं का धन-धान्य तृणवत् हो ही जाना है। पापों के बोझों से इस कलियुगी संसार का बेड़ा भी डूब ही जाना है। दूसरी तरफ ईश्वरीय मत पर चलने वालों को मुक्ति, जीवनमुक्ति का जन्म–सिद्ध अधिकार, 21 जन्मों की अविनाशी खुशी और आमोद-प्रमोद तथा कमलमुख, कमलनेत्र सहित नारायण पद मिलना ही है।

सुधि पाठकों से शुभाकांक्षा है कि वे प्रस्तुत पुस्तक में, प्रचलित कथा और वास्तविक कथा का जो सुन्दर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है उसे केवल पढ़ें ही नहीं वरन् स्मरण भी करें और फिर उस पर मनन भी करें। इसे पढ़ कर पाठकों की शुभ मनोकामनाएँ पूर्ण हों और वे भगवान शिव द्वारा वैकुण्ठ के अमरपद के अधिकारी अवश्य बनें, ऐसी हमारी शुभकामना है।

– ब्र. कु. आत्म प्रकाश

अमृत -सूची

क्र०	विवरण	पृष्ठ सं०
1.	सत्य-नारायण की व्रत कथा	5
2.	क्या इसमें सत्य के परिचय का, श्री नारायण की जीवन-कहानी का या उत्तम व्रत का वर्णन है?	5
3.	क्या कथा में वर्णित व्रत से इतनी उच्च प्राप्ति हो सकती है?	6
4.	कथा में वर्णित वृत्तान्त कहाँ तक सम्भव है और उनका वास्तविक भाव क्या है?	7
5.	वास्तविक व्रत और वास्तविक भाव	11
6.	कथा में ब्राह्मण, भील, वैश्यादि का उल्लेख क्यों?	13
7.	कौन-सा बेड़ा किस में डूबता है और कौन-सा बेड़ा तैरता है?	14
8.	धन और रत्न के लता-पत्रादि बनने का भावार्थ	14
9.	सत्य अर्थात् परमपिता परमात्मा का परिचय	15
10.	सत्य नारायण की सच्ची कथा	17
11.	यह कथा प्रायः लुप्त	28
12.	इस कथा द्वारा सर्व सुखों की प्राप्ति कैसे?	29
13.	नर से श्री नारायण बनने का व्रत	31

सत्य-नारायण की व्रत कथा

भारत में अनेक लोग सत्य-नारायण का व्रत करते तथा कथा भी सुनते हैं। **सत्यनारायण व्रत' कथा** में लिखा है कि –''सत्यनारायण का व्रत दु:ख और शोकादि को शान्त करने वाला, धन-धान्य को बढ़ाने वाला, सौभाग्य को देने वाला तथा सब जगह विजय प्राप्त कराने वाला है। इस व्रत और कथा के करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और इस लोक में सुख से जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में मुक्ति की तथा बैकुण्ठ में देव पद की प्राप्ति कर लेता है। इसको पृथ्वी पर जब मनुष्य करेंगे तब पृथ्वी से दु:ख अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे।'' इस प्रकार, इस कथा में सभी मनोरथों के सिद्ध होने तथा सभी इच्छाओं के पूर्ण होने की बात लिखी है।

क्या इसमें सत्य के परिचय का, श्री नारायण की जीवन-कहानी का या उत्तम व्रत का वर्णन है?

ऊपर इस व्रत और कथा का जो इतना बड़ा माहात्म्य लिखा है, उसको पढ़कर तो हरेक मनुष्य चाहेगा कि वह भी व्रत करे तथा कथा सुने क्योंकि सुख और शान्ति, मुक्ति और जीवन्मुक्ति, विजय और सौभाग्य या धन-धान्य की

---

1. यह व्रत-कथा स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड में अन्तिम पाँच अध्यायों में है। परन्तु वहां कथा न देकर केवल माहात्म्य ही का उल्लेख है। बताया गया है कि यह कथा नैमिषारण्य तीर्थ में सूत जी, जो कि व्यास के शिष्य थे, ने शोनकादि अट्ठासी हज़ार ऋषियों को सुनाई। इस में लिखा है कि यह कथा भगवान ने नारद को तब सुनाई थी जब नारद ने मृत्युलोक में दु:ख देखकर उसकी निवृत्ति के लिये उनसे उपाय पूछा था।

   कई वर्ष हुए गीता प्रेस, गोरखपुर ने कल्याण में, स्कन्द पुराण का हिन्दी अनुवाद छापा था। उसमें उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि मूल पोथी में ऐसी कोई कथा नहीं है।

प्राप्ति तो हर कोई चाहता ही है। परन्तु जब मनुष्य प्रचलित '**सत्यनारायण व्रत कथा**' को पढ़ता या सुनता है तो यह सोचकर आश्चर्य होता है कि इसमें न तो श्री नारायण की कोई आत्म-कथा (Biography) है, न सत्य स्वरूप परमात्मा का कोई परिचय दिया गया है और न ही किसी व्रत की व्याख्या है कि जिसके बारे में मन जान जाए कि इस व्रत को करने से उपर्युक्त उत्तम प्राप्ति हो सकती है, बल्कि इसमें तो केवल व्रत की ही कथा है, अर्थात् केवल यही लिखा है कि अमुक-अमुक ने इस व्रत को किया तो उसे धन-धान्य, मुक्ति और वैकुण्ठ पद की प्राप्ति हुई और अमुक-अमुक ने इस मत को करने का संकल्प भी नहीं किया या व्रत का प्रसाद नहीं लिया तो वे विपत्ति या दु:ख में पड़ गये।

उदाहरण के तौर इसमें सबसे पहली कथा तो यह है कि –''काशीपुरी में शतानन्द नाम वाला एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण था जो कि भीख माँगने पर भी भूख से पीड़ित रहता था। भगवान उसके सम्मुख एक बूढ़े ब्राह्मण के रूप में आये और उन्होंने उसे सत्यनारायण व्रत करने के लिए कहा। उस व्रत को करने से उसे धन-सम्पत्ति तथा सुख का लाभ हुआ। वह उसे हर मास करने लगा और अन्त में उसे मुक्ति की प्राप्ति हुई।'' दूसरी कथा लकड़ी बेचने वाले एक निर्धन भील की है। ''वह भी इस व्रत को करने से निर्धनता, दु:ख तथा शोक से छूट गया और अन्त में बैकुण्ठ में देव पद को प्राप्त हुआ।'' स्पष्ट है कि कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि इन्होंने कौन-सा व्रत किया। कैसे किया और कौन-सी कथा सुनी?

क्या कथा में वर्णित व्रत से इतनी उच्च प्राप्ति हो सकती है?

अब सोचने की बात है कि आज जो सत्यनारायण व्रत की प्रचलित रीति है उसके अनुसार व्रत करने या व्रत-कथा सुनने से क्या इतनी उच्च प्राप्ति हो

सकती है? व्रत की प्रचलित रीति तो यह है कि लोग प्रातः निराहार रहते हैं, पुष्प हाथ में लेकर सत्यनारायण का ध्यान करते हैं, उसकी विधिपूर्वक स्तुति करते हैं और प्रसाद लेते तथा मीठा भोजन करते हैं। स्पष्ट है कि वास्तव में वह व्रत, जिसका माहात्म्य हम इस लेख के शुरु में कर आये हैं, इस प्रचलित व्रत से भिन्न और उच्च कोटि का व्रत रहा होगा। वरना, यदि कुछ घण्टों के लिए निराहार रहने रूप व्रत के करने से या एक दिन सवाया भोग लगाकर मीठा-ही-मीठा खाकर मौज मनाने से सम्पूर्ण सुखों की अथवा मुक्ति और जीवन्मुक्ति की प्राप्ति हो सकती होती और इस जीवन में भी मनुष्य दरिद्रता और दुःख से छूट कर सम्पत्ति और सूख प्राप्त कर सकता होता तो इस अत्यन्त सहज युक्ति को अपनाने से तो कोई भी नहीं चूकता, यहाँ तक कि नास्तिक कम्युनिस्ट (Communist) लोग भी क्रान्ति और दरान्ति (हँसुआ) की बात छोड़कर संक्रान्ति पर इसी व्रत को करना ही सर्वोत्तम उपाय मानते । और, आज जबकि देश में दर्दनाक दरिद्रता है और लाखों लोग भूख से कर्राह रहे हैं, तो सरकार भी इसी व्रत को करती और कराती परन्तु इस कथित व्रत में यह विशेषता ही नहीं है कि देश में सुख-सम्पत्ति हो जाये और मनुष्य को मुक्ति और जीवन्मुक्ति की प्राप्ति हो। अब इस व्रत-कथा में जो मुख्य कथा है, उस पर विचार करने पर भी आप यही देखेंगे कि उसमें सत्य स्वरूप परमात्मा का परिचय या श्री नारायण की आत्म-कथा का या सच्चे व्रत का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

कथा में वर्णित वृत्तान्त कहाँ तक सम्भव है और उनका वास्तविक भाव क्या है?

सत्य नारायण व्रत-कथा में जो सबसे बड़ी कथा लिखी हुई, वह यह है कि – एक वैश्य ने यह संकल्प किया कि यदि उनके सन्तान होगी तो वह इस व्रत

को अवश्य करेगे। परन्तु जब उसके एक कन्या उत्पन्न हुई तो उसने अपना वचन टाल दिया और कहा कि इसके विवाह के अवसर पर व्रत करूँगा। परन्तु उस अवसर पर भी वह व्रत करना भूल गया। इसके परिणामस्वरूप सत्य नारायण ने रुष्ट होकर उसे शाप दिया कि उस पर दुःख आयें। इधर राजा की चोरी हो गयी थी और चोरों ने राजा के दूतों को अपने पीछे भाग कर आते हुए देख और जहाँ वैश्य तथा उसका जामाता (दामाद) बैठे थे, वहां धन छिपा कर भाग गये। तो राजा के दूत वैश्य और उसके जामाता को चोर मानकर पकड़ कर राजा के पास ले गये जिसने उन्हें जेल में बन्द करा दिया। उधर वैश्य की स्त्री ने पति के लौटने के मनोरथ को लेकर सत्यनारायण व्रत किया और भगवान ने राजा को स्वप्न दिया कि–**''इन दोनों को छोड़ दो वरना मैं तुम्हारा नाश कर दूँगा।''**

जब राजा द्वारा मुक्त होकर दोनों अपने बेड़े की ओर लौट रहे थे तो सत्यनारायण ने उससे पूछा–वैश्य, तुम्हारे बेड़े में क्या है? वैश्य बोला –**'क्या कुछ लेने का विचार है?** इसमें तो केवल लता-पत्रादि ही है।'

तब साधु वेश में सत्यनारायण बोले –**'तथास्तु'**। इसके परिणाम-स्वरूप वैश्य के बेड़े में सब धन-सोना आदि लता-पत्रादि ही बन गए परन्तु जब वैश्य ने लौट कर उस साधु वेशधारी से दुःख प्रगट किया तो उसने कहा –'तुम मेरी पूजा नहीं करते हो और व्रत नहीं करते हो, इसलिए **मेरी इच्छा से तुम्हें यह सब दुःख होता है।' वैश्य बोला– 'आपकी माया से मोहित होकर व्रत करना भूल गया था।' जब वैश्य ने व्रत करने का आश्वासन दिया तब भगवान की प्रसन्नता के फल-स्वरूप लता-पत्रादि के स्थान पर पहले की तरह सोना-चांदी, धनादि प्रगट हो गया।** आगे लिखा है – आखिर वैश्य और उसका जमाता अपने नगर के तट तक आ पहुँचे और बेड़े को तट से लगाकर उन्होंने नगर की भूमि पर पग धरा। वैश्य की पुत्री, जो कि **''सत्यनारायण**

व्रत'' कर रहीं थी, अपने पिता और पति के बेड़े के आने की सूचना पाकर, सत्य-नारायण का प्रसाद छोड़कर, बेड़े की ओर चल पड़ी। **प्रसाद न लेने का परिणाम यह हुआ कि उसका पति अदृश्य हो गया और बेड़ा डूबकर सागर-तल में विलीन हो गया। परन्तु वह जब दु:खी होकर रोने लगी और उसके पिता वैश्य ने यह संकल्प किया कि उसका जामाता आ जाएगा तो वह सत्यनारायण का व्रत करेगा तब आकाशवाणी हुई –''कलावती'' (वैश्य की पुत्री) प्रसाद छोड़कर आई है, वह जाकर प्रसाद खा आवे तो उसका पति लौट आयेगा।** वह गयी और जब प्रसाद खाकर लौट आई तो उसका पति प्रकट हो गया और डूबा हुआ बेड़ा भी फिर तैर आया।

ऐसे ही कथा राजा तुंगभद्र की है जिसने सत्यनारायण के व्रत का तथा कथा का निरादर करने से दु:ख पाया और बाद में कथा, व्रत आदि के द्वारा सुख पाया।

कलावती की उपरोक्त कथा पर विवेक-युक्त रीति से विचार करने पर आप मानेंगे कि कथा में यह जो लिखा है कि –**''धन-सोना आदि सब लता-पत्र ही बन गए और फिर सत्यनारायण जी के प्रसन्न होने पर वे पुन:सोने चांदी के रूप में परिवर्तित हो गये'' वह साधारण अथवा अक्षरार्थ में असामान्य ही लगता है। इसी प्रकार सत्यनारायण जी के रुष्ट होने के कारण कलावती के पति के अदृश्य होने तथा बेड़े के डूब कर समुद्रतल में विलीन हो जाने तथा फिर सत्यनारायण जी के प्रसन्न होने पर बेड़े के तर जाने तथा कलावती के पति के प्रगट हो जाने की बात भी वाच्यार्थ में असम्भव ही प्रतीत होती है।** यों कोई व्यक्ति भक्ति की लहर में बह कर चाहे हर-एक बात को ठीक मान ले परन्तु विवेक तथा ज्ञान की कसौटी पर कसने से तो ये वृत्तान्त एक भक्ति-प्रधान मानव मन की विचारधारा ही मालूम

होती है। वास्तव में तो सत्य स्वरूप परमात्मा का तथा श्री नारायण का बहुत बड़ा माहात्म्य है और व्रत भी उत्तम फल को देने वाला है परन्तु लोगों ने वास्तविक कथा के भाव को इस ढंग से वर्णन करके सारी बात ही बदल दी है।

इसके अतिरिक्त, कथा में यह जो लिखा है –''भगवन्, मैं आपकी माया से मोहित होकर उस व्रत को करना भूल गया था'' या कि ''भगवान ने रुष्ट होकर शाप दिया'' और भगवान ने कहा – ''मेरी इच्छा से ही तुम पर दु:ख आता है'' आदि-आदि वास्तव में यह सब उल्लेख भगवान श्री नारायण के स्वरूप एवं स्वभाव के विरूद्ध हैं।[2] भगवान तो सदा आनन्द स्वरूप और सर्वहितकारी है, वह कभी किसी को भी शाप या दु:ख नहीं देते।

वह तो सुख-शान्ति के दाता और कल्याणकारी हैं, दु:खी तो मनुष्य अपने ही बुरे कर्मों के कारण होता है। पुनश्च, भगवान तो मायातीत हैं, उन्हें माया कदापि लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सकती। अत: यह कहना कि 'भगवान की माया से'' हम मोहित होते हैं, बिल्कुल अनर्थकारी है। इसके अतिरिक्त, कथा में दण्डी साधु के रूप में भगवान का आना और वैश्य को शाप देकर नदी तट पर जाकर बैठ जाना आदि-आदि भी कुछ ऐसे उल्लेख हैं जो कि भगवान के स्वरूप और अवतरण की रीति-नीति आदि के विरुद्ध हैं और वास्तव में भगवान के माहात्म्य को बढ़ाने वाले नहीं हैं। भगवान का जन्म और उनके कर्त्तव्य तो दिव्य है[3] और दिव्यता का यह अर्थ नहीं है कि वह इस प्रकार दण्डी साधु का रूप धारण करके ख्वाह-मख्वाह एक आदमी के पीछे पड़कर, उसे शाप देकर फिर

---

2. स्वयं इस व्रत-कथा के आरम्भ में ही लिखा है कि जो मनुष्य दयावान, निष्पाप और निर्विरोधी है, वह नारायण के समान होता है, तब भला बैर या रुष्ट भाव से दु:ख पहुँचाना नारायण का हक कैसे हो सकता है?
3. इस विषय में लेखक की पुस्तक 'परमात्मा का अवतरण कब और कैसे? पढ़ें।

नदी-तट पर जा कर बैठ जाते हैं और फिर उसके आने तथा दु:ख प्रगट करने पर कहते हैं कि ''मेरी इच्छा से तुम्हें दु:ख हुआ है क्योंकि तुम मेरी पूजा नहीं करते!''

वास्तविक व्रत और वास्तविक भाव

अत: उपर्युक्त रीति से विचार करने पर इस निर्णय पर पहुँचना स्वाभाविक है कि वास्तव में वह व्रत हो कि भगवान ने वृद्ध-ब्राह्मण के रूप में आकर करने के लिए कहा था और जिसका इतना उच्चा माहात्म्य है, कोई और ही व्रत था और भगवान के इस कथन (कथा) का भाव भी कुछ और ही था।

पहले तो आप यह देखिए कि यहाँ कहा गया है कि यह कथा नैमिषारण्य तीर्थ में सुनाई गयी थी। ये नैमिषारण्य, सीतापुर जिले में है। परन्तु यदि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस प्रसंग में मन ही नैमिषारण्य है क्योंकि निमेष (अर्थात् पलक झपकने जितनी देर) में जहाँ आत्मा का अनुभव हो जाय वहीं नैमिष तीर्थ है। 'अरण्य' वन को कहते हैं। जब हम मन को निर्जन वन के समान बना देते हैं, अर्थात् किसी भी मनुष्य या देहधारी को याद करने की बजाय एक परमात्मा ही की स्मृति में स्थित हो जाते हैं तो 'भृकुटी' रूपी कुटी में बैठकर आत्मा को स्वरूप का अनुभव होता है।

अब तनिक 'तीर्थ' शब्द की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। 'तीर्थ' तारने वाले को कहते हैं।[4] अत: तीर्थ किसी वन में या जलाशय के स्थान पर होने को ही नहीं कहते बल्कि गुणों की धारणा तथा पवित्रता ही सच्चा तीर्थ है। स्वयं स्कन्द पुराण, जिसमें **'सत्यनारायण व्रत कथा'** मिलती है, के काशी खण्ड में ही कहा है कि – सत्य, क्षमा,दया, इन्द्रिय निग्रह, मधुर वचन, सन्तोष आदि

4. तरंति येन तत्र वा तत्त तीर्थम्।

सभी तीर्थ हैं।[5] अत: मन रूपी वन में इन दिव्य गुणो की धारणा करके एकटिक बैठना ही नैमिष्यारण्य में व्रत कथा के लिए तैयार होना है।

अब यह भी समझने की बात हैं कि **'व्रत'** का क्या अर्थ है। वास्तव में किसी भी नियम या दिव्य गुण को धारण करके उसे अपनाये रहने के लिये दृढ़ संकल्प किये रहना ही व्रत लेना है।[6] इस दृष्टिकोण से **'ब्रह्मचर्य'** तथा इन्द्रिय-निग्रह ही सर्वोत्तम तीर्थ तथा सर्वोत्तम व्रत हैं।[7] स्वयं स्कन्द पुराण, जिसमें यह

---

5. सत्यं तीर्थ, क्षमा तीर्थ, तीर्थमिन्द्रिय निग्रह:।
   सर्व भूतदया तीर्थ तीर्थ, मार्जवमेय च।।
   दानं तीर्थ, दमस्तीर्थ, सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
   (ख) एक हिन्दी कवि ने भी कहा है--
   मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान।
   दस द्वारों का देहरा तां में जोत पहचान।।
6. व्रतामति कर्म नाम निवृत्ति कर्म वारयतीति सत:।
   इदमपीतरद् व्रतमेतस्मादेव बृणाति सत:, अर्थात् 'बुरे कर्मों से हटा देता है,
   इसलिए इसे व्रत कहते हैं; स्वीकार या ग्रहण किया जाता है,
   इसलिए भी 'व्रत' कहते हैं। तो बुरी आदत को छोड़ने और अच्छी को दृढ़ता से धारण करना ही 'व्रत' है।
7. ब्रह्मचर्य परम तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता।।
   ज्ञानं तीर्थं घृति तीर्थं तपस्तीर्थुदाहृतम्।
   तीर्थानामपि तत्तीर्थ विशुद्धिर्मनस: परा।
   न जलाप्लुत देहस्य स्नानामित्यभिधीयते।
   स स्नातो यो दमस्नात: शुचि: शुद्ध मनोमल:।।

   स्कन्द,काशीखण्ड, (6/26-33)

   ध्यान रहे कि यहाँ यह भी कहा है कि जिसने इन्द्रिय-संयम रूप स्नान किया है, वास्तव में वही पवित्र है।

कथा है, उसमें भी यह कहा है। परन्तु लोग इस प्रकार के वन, तीर्थ और व्रत पर तो ध्यान ही नहीं देते तब वह नर से श्री नारायण बनने की सत्य कथा सुनने के न पात्र ही बनते और न ही उस कथा का कथित फल ही प्राप्त कर सकते हैं।

आज जबकि एक साधारण वृद्ध ब्राह्मण के तन में दिव्य प्रवेश कर के सत्य स्वरूप परमात्मा शिव ने हमें फिर नर से श्री नारायण बनने की सच्ची कथा सुनाई है तो हम जान सकते हैं कि वह व्रत कौन-सा है और वह सत्य कथा कौन-सी है।

जैसे कि ऊपर कहा गया है, वास्तव में वह व्रत है ब्रह्मचर्य अथवा पूर्ण पवित्रता का व्रत। भगवान कुछ घड़ियों के लिए निराहार करने की आज्ञा नहीं देते बल्कि कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि के बीच जो संगम समय है, उस थोड़े-से-काल में निर्विकार जीवन व्यतीत करने की आज्ञा देते हैं। आज मनुष्य ने काम, क्रोध आदि विकारों को आत्मा का आहार मान रखा है (तभी तो वे नित्य इन विकारों में बर्तते तथा इन्हें स्वाभाविक मानते है)। भगवान कहते हैं कि विकारों रूपी आहार को छोड़ना ही सच्चा सर्वोत्तम व्रत है। वह निर्विकार जीवन व्यतीत करने की आज्ञा देते हैं। वास्तव में तन, मन, धन से कोई भी बुरा कर्म न करना—यही सर्वोत्तम व्रत है जिसको करने से नर कंगाल से ताजधारी, निर्धन से सदा धनवान, रोगी से सदा निरोगी और सुखी-सम्पत्तिवान बन जाता है और मुक्ति को तथा बैकुण्ठ में देव - पद को प्राप्त कर लेता है।

कथा में ब्रह्माण, भील, वैश्यादि का उल्लेख क्यों ?

इस व्रत को भील, ब्राह्मण, राजा, व्यापारी, नर-नारी सभी कर सकते है और इस लोक में सुख भोगते हुए भविष्य में भी बैकुण्ठ का सुख प्राप्त कर सकते हैं। कथाकार ने इस भाव को स्पष्ट करने के लिए नारी कलावती और लीलावती,

व्यापारी वैश्य और उसके जामाता, राजा 'उल्कामुख', भिखारी, ब्राह्मण और भील आदि की कथाएं बना दी है और उनमें असम्भव बाते मिश्रित कर दी है। उसने भगवान (शिव) का स्पष्ट परिचय भी नहीं लिखा और जिस वृद्ध ब्राह्मण के तन में भगवान प्रविष्ट अथवा सन्निविष्ट हुए और उसको 'ब्रह्मा' नाम दिया, उसका भी परिचय नहीं दिया। इस प्रकार सारा भाव अस्पष्ट, अनिश्चित और असम्भव मालूम होता है। सारी बात बिगड़ गयी है।

कौन-सा बेड़ा किस में डूबता है और कौन-सा बेड़ा तैरता है ?

पुनश्च, भगवान कहते हैं कि – 'जो नर-नारी निर्विकार जीवन व्यतीत करने रूपी व्रत को करेंगे, वे धन-धान्य से सम्पन्न हो जायेंगे और संसार रूपी सागर से उनका जीवन रूपी बेड़ा तर जायेगा और जो इस व्रत को नहीं करेंगे उनका जीवन रूपी बेड़ा शोक-सागर में डूब जायेगा। परन्तु कथाकार ने स्थूल बेड़े के डूबने और तरने की बात लिख दी है।

धन और रत्न के लता-पत्रादि बनने का भावार्थ

इसके अतिरिक्त, भगवान तो कहते हैं कि तन, मन, धन मेरे अर्पण करके स्वयं को ट्रस्टी (Trustee) अर्थात निमित्त मान कर चलो ताकि आपकी आसक्ति मिट जाये और कल्याण हो जाये। अब जो लोग ब्राह्मण-श्रेष्ठ ब्रह्मा के मानवी तन में प्रविष्ट भगवान के इन महावाक्यों से यह अर्थ लेते हैं कि शायद भगवान को उनसे कुछ लेने की इच्छा है, तो वे भगवान से अपना धन-धान्यादि छिपाते हैं, वे यह नहीं समझते कि भगवान तो धन-सम्पत्ति आदि के दाता हैं, वह हमारा लेकर क्या करेंगे? तो जो इस प्रकार भगवान के अर्पणमय न होकर, उसको भी माँगने वाला समझते हैं, उनका इस विश्व में कल्याण नहीं होता क्योंकि उनकी मोह-ममता नहीं मिटती। अब उनके अकल्याण की बात को

कथाकार ने इस प्रकार लिख दिया है कि भगवान के शाप से 'उनका सब धन-धान्य लता-पत्रादि बन जाता है' और पून: व्रत रखने पर उनके वरदान से वह 'धन और सोना बन जाता है।' कथाकार के इस प्रकार के लेख से असम्भावना का तत्व आ गया है क्योंकि वास्तव में धन कभी लता या पत्रों का रूप धारण नहीं कर सकता ।अत: वास्तविक भाव को इन अविश्वसनीय शब्दों में व्यक्त करने से सारी बात बिगड़ गयी है।

संक्षेप में हम पुनरावृत्ति का विचार न करते हुए यही कहना चाहेंगे कि सत्य स्वरूप भगवान शिव – नर को श्रीनाराण-सा बनाने के लिए अथवा मुक्ति और जीवन्मुक्ति के योग्य बनाने के लिए पवित्रता अथवा ब्रह्मचर्य रूपी व्रत बताते हैं, श्री नारायण रूपी लक्ष्य की स्मृति बनाये रखने की आज्ञा देते हैं और अर्पणमय जीवन व्यतीत करने की सम्मति देते हैं। जो इस पवित्रता रूपी व्रत का पालन करता है वह तर जाता है और धन-सम्पत्ति का मालिक बन जाता है और जो नहीं करता उसका जीवन रूपी बेड़ा डूब जाता है। अब हम पहले सत्य स्वरूप परमात्मा का परिचय व्यक्त करते हैं और उसके बाद सत्य नारायण की सच्ची कथा का उल्लेख करेंगे।

सत्य अर्थात् परमपिता परमात्मा का परिचय

परमपिता परमात्मा निराकार हैं। ज्योति-बिन्दु स्वरूप हैं, ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर, पतित-पावन और मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति के दाता हैं। कल्याणकारी होने के कारण उनका दिव्य अथवा कर्त्तव्य-वाचक नाम – 'शिव' है। भारत के लोग 'शिवलिंग' नाम की मूर्ति बना कर आज दिन तक पूजन करते हैं। परन्तु पूजा करने वाले भक्त लोग शिव के पूर्ण एवं यथा-सत्य परिचय को नहीं जानते हैं। यद्यपि चिरकाल से सर्वशक्तिवान एवं

सद्गतिकारी परमात्मा शिव की सारे विश्व में इसी शिवलिंग रूप में भिन्न-भिन्न नामों से, भिन्न धर्मों व देशों में पूजा होती रही है तथापि लोगों को इनका स्पष्ट ज्ञान नहीं है। भारत में 'गोपेश्वरम्' और 'रामेश्वरम्' के जो मन्दिर हैं, उनसे यह स्पष्ट विदित होता है कि परमात्मा शिव श्री कृष्ण तथा श्री राम के भी श्रद्धेय, मान्य एवं पूज्य हैं। उज्जैन में या सोमनाथ में विक्रमादित्य द्वारा और मक्का में इब्राहिम के द्वारा भी इसकी स्थापना इसी रूप में हुई और इससे यह सिद्ध होता है कि इस्लाम धर्म में जो संगे-असवद है वह वास्तव में शिवलिंग ही का प्रारूप है। ईसा मसीह, नानक और दूसरे धर्म-संस्थापकों ने भी परमात्मा को ज्योतिस्वरूप ही माना है।

परमात्मा के जितने भी भिन्न-भिन्न नाम है वे सब उनके कर्त्तव्यों से सम्बन्धित हैं, उदाहरण के तौर परमात्मा सारे जगत् का वा सभी आत्माओं का कल्याण करते है, इसलिए उन्हें हम **'शिव'** नाम से याद करते हैं। परमात्मा हम आत्माओं की 84 जन्मों की कहानी और इस सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त का रहस्य सुनाते हैं, अत: 'अमर कथा' सुनाने वाला होने के कारण परमात्मा को हम **'अमरनाथ'** कहते हैं और ज्ञान रूपी सोम-रस पिलाने वाला होने के कारण उसे **'सोमनाथ'** कहते हैं तथा मनुष्य-सृष्टि का रचयिता होने के कारण उनका एक नाम **'विश्वेश्वरनाथ'** भी है और कालों के काल होने के कारण उनका एक नाम **'महाकालेश्वर'** भी है। हम सभी आत्माओं का पिता होने के नाते उनको **'परमपिता परमात्मा'** (गॉड द फ़ादर; God the Father) भी कहा जाता है और सर्वोच्च होने के कारण **'अल्लाह'** भी कहते हैं। परमात्मा शिव अमर कथा सुनाने के लिए व भ्रष्टाचारी एवं पतित दुनिया को श्रेष्ठाचारी व पावन बनाने के लिए एक बूढ़े अनुभवी मनुष्य के शरीर का आधार लेते हैं और उसके मुख द्वारा सारे शास्त्रों का सार सुनाते हैं जिसे हम **'भगवान'** का गीत अथवा

'भगवदगीता' भी कहते हैं। वह मनुष्य **'प्रजापिता ब्रह्मा'** कहलाता है।

परमपिता परमात्मा शिव व प्रजापिता ब्रह्मा दोनो का दिव्य जन्म भारत में ही होता है, इसलिए भारत में ही शिव का सबसे अधिक गायन है और भारत का भी सारे विश्व में गायन होता है। प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जो **'अमर कथा'** या **'सत्य-नारायण की कथा'** परमपिता परमात्मा शिव सुनाते हैं उसे अब वह पून: सुना रहे हैं। अब हम उसका उल्लेख करेंगे।

सत्य-नारायण की सच्ची कथा

परमपिता परमात्मा शिव ने जो सत्य-नारायण की कथा सुनाई है, वह संक्षेप में इस प्रकार है –

''आज से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व सृष्टि पर सूर्यवंशी, सोलह कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री लक्ष्मी और श्री नारायण – जल, थल, नभ, चर-अचर-सभी पर अखण्ड चक्रवर्ती राज्य करते थे। उस समय सृष्टि में सम्पूर्ण सुख और शान्ति थी। दूध और घी की नदियाँ बहती थीं। सोने और रत्नों से जड़े हुए महल थे ।प्रकृति मनुष्य की दासी थी। तब काया निरोग और कंचन-सम हुआ करती थी। सब ओर आनन्द-मंगल छाया हुआ था। अशान्ति और दु:ख का तो कोई नाम तक न जानता था। कभी अकाले मृत्यु न होती थी। अपनी इच्छा के अनुसार सभी प्राणी अपना पुराना शरीर रूपी चोला बदलते थे। उस समय काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आलस्यादि तनिक भी न थे। सभी जन्म ही से महात्मा थे। यह देश देवस्थान था, सभी निर्विकारी और पूर्णत: पवित्र आत्माएं थीं। श्री लक्ष्मी और श्री नारायण के राज्य का सुख और शान्ति को भोगने के लिए परमधाम से, अर्थात् मुक्ति की अवस्था से इस सृष्टि में अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार अपने-अपने समय पर आकर साकार हुई। इस सृष्टि में इन

पवित्र आत्माओं की सुख शान्ति सम्पन्न अवस्था को 'सतोप्रधान अवस्था' अथवा 'जीवन्मुक्ति' कहा जाता है। तब जन्म भी योग-बल से, रूदन-रहित होता था, उस समय सृष्टि में बस एक ही सत्य धर्म था जिसे 'देवी-देवता धर्म' कहते हैं। एक 'देव भाषा' का ही प्रचलन था। उस समय हर एक चीज़ में सत्त्व था। 'राजा' और 'प्रजा'–दोनों ही सुख-शान्ति और प्रेम से परिपूर्ण रहते थे। गोया सभी दो ताजधारी – प्रभामण्डल और स्वर्ण मुकुट से युक्त थे। तब सभी को सब-कुछ प्राप्त था। इसलिए वहाँ 'इच्छा' या 'तृष्णा' नहीं थी। उक्ति प्रसिद्ध है कि 'देवताओं के खज़ाने में किसी भी चीज़ की कमी नहीं थी।' जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जीव-जन्तु, कोई भी कष्ट नहीं देते थे। तब कोई भी दैत्य, राक्षस या असुर नहीं था। सभी एक 'देवता' वर्ण ही के थे। तब कोई पूजा के स्थान या शास्त्र आदि भी नहीं थे बल्कि सभी पूजयनीय अवस्था वाले, साक्षात् देवी या देवता थे। लड़ाई बिल्कुल नहीं होती थी इसलिए न सेना थी, न अस्त्र-शस्त्र ही होते थे। न रोग थे, न औषधालय ही थे। क्योंकि मनुष्य के जीवन में न तनाव था, न पर्यावरण-प्रदूषण था, न खाने की वस्तुओं में मिलावट थी, न लोग स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन ही करते थे। अत: लोग दीर्घजीवी थे। उनकी औसत आयु 150 वर्ष थी। तब न मुकदमे थे, न न्यायालयों की जरूरत थी। न कोई निर्धन या कंगाल या भ्रष्टाचारी था, न हड़ताले ही होती थी बल्कि सभी श्रेष्ठाचारी थे। महारानी और महाराजा जनता के माता-पिता के समान बरतते थे। शासन दण्ड के भय से नहीं बल्कि स्वाभाविक स्नेह पर आधारित था। कहावत है कि – 'तब शेर और गाय भी एक घाट पानी पीते थे।' इन देवी-देवताओं के पवित्र होने के कारण ही उनके परिचय में उन्हें 'कमल-हस्त', 'कमल-नेत्र', 'कमल-मुख' आदि विशेषणों से युक्त किया जाता है। जीवन में कभी रोग, दु:ख या संकट न होने से तथा अखण्ड पवित्रता होने से उनके मुख-मण्डल पर एक सात्त्विक आभा विराजमान

थी और उनके व्यक्तित्त्व में विशेष आकर्षण और प्रभुत्त्व था तथा उससे शीतलता और दिव्यता के स्पन्दन विकीर्ण होते थे। वे ऐसे मधुर स्वभाव वाले थे कि आज लोग उनकी मूर्तियों के सामने बैठकर उनकी पार्थिव प्रतिमाओ से भी शान्ति का अनुभव करते तथा धन-धान्य की इच्छा करते हैं।

सतयुग के देवी-देवताओं को 'सूर्यवंशी' कहा जाता है क्योंकि उनमें आत्मा का तेज पूर्ण कलाओं को प्राप्त था, अर्थात् उनकी पवित्रता सोलह कला थी। तब कोई भी छुआ-छुत नहीं थी, न रंग-भेद, वर्ग-भेद या भाषा-भेद था। सभी स्वधर्म में (आत्मा के स्वरूप में) स्वाभाविक रूप से स्थित थे। अपनी इन विशेषताओं के कारण सतयुग का आज तक भी गायन है। श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का वह राज्य पूरी आठ पीढ़ियों तक चला। उस युग की आयु 1250 वर्ष थी। उसी को **'सतयुग'** कहते हैं। वह सृष्टि मानों फूलों का एक विराट बगीचा था अथवा वही स्वर्ग था, **वैकुण्ठ** था।

जिस प्रकार एक नया मकान कुछ समय के बाद स्वयं पुराना हो जाता है, उसी प्रकार वह नई, सुख की दुनिया धीरे-धीरे पुरानी होना शुरू हुई और पवित्रता-सुख-शान्ति की सोलह कला में से दो कला कम हो गई और तब त्रेता युग और श्री सीता-श्री राम का राज्य शुरू हुआ। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार उस समय भी सृष्टि पर सर्व सुख व पूर्ण शान्ति व स्वराज्य था। उस 'राम-राज्य' के सुख का स्वप्न भारतवासी अब तक भी देखते हैं। गाँधी जी भी उसी राम-राज्य का स्वप्न देखा करते थे। राम-राज्य में भी मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह अथवा अर्थोपार्जन के लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था। तब भी भूमि अत्यंत उपजाऊ थी। राज के लिए न एक-दूसरे पर आक्रमण होते थे, न ही किसी प्रकार का ईर्ष्या-द्वेष ही था। तब भी अकाले मृत्यु नहीं होती थी। माता-पिता के जीवन में, काल उनके पुत्र को नहीं छीन सकता था। तब पवित्रता-

सुख-शान्ति की दृष्टि से सभी नर-नारी चौदह कला सम्पूर्ण थे। जैसे पूर्णमासी से एक दिन पूर्व चन्द्र 14 कला वाला होता है, वैसे ही त्रेता युग में सभी आत्माएं चौदह कला प्रकाशमान थीं।

उस युग में भी सभी निरोग थे। तब भी लोग स्वभाव से धर्म-स्थित थे। धर्म ही उनके कर्म पर अंकुश था।

इससे यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि राम के राज में 'रावण' नाम का असुर या राक्षस नहीं था। भला किस की सामर्थ्य, कि राम की सीता को कोई बुरी दृष्टि से देख भी सकता! चुराने की बात तो एक ओर रही। वास्तव में राम और रावण की आध्यात्मिक कथा एक अन्य युग से सम्बन्धित है। त्रेता युगी राजा राम तो जीवन्मुक्त थे और पावन थे। उनके जीवन काल में दैहिक या किसी भी प्रकार का दु:ख नहीं था।

दैहिक-दैविक-भौतिक तापा
राम राज न काहू व्यापा

त्रेतायुग में न कोई श्रवण कुमार के माता-पिता की तरह नेत्रान्ध होते थे, न कोई किसी को शाप देता था। न कोई मन्थरा जैसी नारियां थीं, न कैकेयी की तरह कोई सौतेली माता होती थी। गृहस्थ धर्म में एक से अधिक विवाह कोई करता ही नहीं था। न कोई जरा-पीड़ित होता था, न कोई किसी के वियोग या शोक में मरता ही था। सभी मोहजित थे। राम के राज में तथा उससे पहले भी 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार सभी धर्म-युक्त और उच्च आचरण वाले थे। तब न कोई काना धोबी था, न ही कोई किसी की निन्दा करता था। तभी तो 'राम राज' की इच्छा सभी करते हैं–

राम राजा, राम प्रजा, राम साहूकार है।
बसे नगरी, जीये दाता, धर्म का उपकार है।।

भला किस की मजाल कि राम की रानी, पवित्र सीता का अपहरण कर सके? क्या कभी सोने का हरिण होता है? क्या दस सिर वाला भी कोई व्यक्ति हो सकता है? क्या पृथ्वी में दबे घड़े से किसी का जन्म सम्भव है?

वास्तव में राम कथा तो रामेश्वर (शिव) से संबंधित है। परमपिता परमात्मा को 'रमणीय' (अर्थात् मन को प्रिय लगने वाला) होने के कारण 'राम' भी कहा जाता है। 'रावण' शब्द का अर्थ 'राम' के विपरीत है। 'रावण' रुलाने वाले ही को कहा जाता है। पाँच विकार ही मनुष्यात्मा के रूदन अर्थात् दु:ख एवं अशान्ति के कारण हैं। अत: पाँच विकारों का सामूहिक नाम ही 'रावण' है। रावण के दस सिर नर और नारी में पाँच-पाँच विकार होने के सूचक हैं। अत: 'राम कथा' उस समय से सम्बन्धित आध्याात्मिक कथा है जब समाज का हर नर-रारी पाँच-पाँच विकारों से पीड़ित था। वास्तव में यह सारा संसार ही एक बड़ा द्वीप अथवा टापू है क्योंकि इसके चहुं ओर सागर हैं। अत: यही 'श्री लंका' है; वरना आज जिसे हम 'लंका' कहते है उसके इतिहास में तो दस सिर वाला कोई असुर राजा हुआ ही नहीं । इस बात की सत्यता स्वयं उस देश के वासियों से पूछी जा सकती है। आध्यात्मिक दृष्टि से हरेक आत्मा ही 'सीता' है; वह अयोनिज है। आत्मा के पति परमात्मा ही 'राम' हैं। जब मनुष्यात्मा लक्ष्य में मन को लगाने की मर्यादा रूपी (लक्ष्मण) रेखा को उलांघती है तभी उसे पाँच विकार रूपी रावण अपहृत कर लेता है और बन्दी बना लेता है। तब परमपिता राम (शिव) ही उसे छुड़ाते अर्थात् मुक्ति दिलाते हैं, यह सारा वृतान्त कलियुग ही के अन्त में होता है। त्रेतायुगी राजा राम के समय में न तो कुम्भकरण होता है, न मेघनाद और न रावण।

त्रेतायुग में श्री राम की 12 पीढ़ियों ने राज्य किया। उस युग की भी आयु 1250 वर्ष थी। उस समय उसी सतोगुणी स्वभाव वाली आत्माएं ही इस सृष्टि में साकार हुई। तब भी एक ही सत्य आदि सनातन देवी-देवता धर्म अथवा आर्य धर्म था। सतयुग और त्रेता युग की आत्माओं मे से श्री लक्ष्मी और श्री नारायण अति प्रसिद्ध हुए है तथा श्री सीता और श्री राम की आत्माएं भी श्रेष्ठ व मर्यादा पुरुषोत्तम आत्माएं मानी जाती है।

त्रेता युग के अन्त में सृष्टि और भी पुरानी हो गयी और उस समय पवित्रता तथा सुख-शान्ति की छः कलाएं और कम हो गयीं। तब देवी-देवता वाम मार्ग में चले गये, अर्थात् पतित हो गये। इन दोनों युगों को 'ब्रह्मा का दिन' कहते हैं। द्वापर युग के आदि से माया का, अर्थात् आत्माओं के सबसे पुराने दुश्मन **'रावण'** का राज्य शुरू हुआ। दुःख और अशान्ति शुरू हो गई और मनुष्यात्माओं का सतो-सामान्य से रजोप्रधान अवस्था में आना शुरू हुआ। मनुष्यात्माएं धीरे-धीरे पाँच विकारों के जाल में जकड़ती गयीं और उसी समय अन्य धर्म -पिताओं द्वारा दूसरे धर्मों की स्थापना शुरू हुई। तब देवी-देवता धर्म में विकार आ गये थे। दूसरे धर्मों में सबसे पहले इब्राहिम ने इस्लाम धर्म की स्थापना की। इसी द्वापर-युग से ही भक्ति मार्ग शुरू हुआ और वेद, उपनिषद्, शास्त्र और पुराण लिखे गये और शिवलिंग की मूर्ति के रूप में पूजा शुरू हुई।

यही वह समय है जब ऋषि-मुनि हुए और उन्होंने धार्मिक ग्रन्थ लिखे। उस समय भक्ति सतोप्रधान अवस्था में थी। इसलिए केवल निराकार परमपिता परमात्मा शिव ही की पूजा होती थी। लेकिन धीरे-धीरे भक्ति भी सतोप्रधान अवस्था से उतर कर रजोप्रधानता की अवस्था को प्राप्त हुई और अन्य धर्म-पिताओं की आत्माएं भी सृष्टि-मंच पर आना शुरु हो गयीं। तब विष्णु, श्री लक्ष्मी, श्री नारायण, शंकर, श्री कुष्ण, श्री राम आदि-आदि की पूजा-शुरु होती गयी। यज्ञ, जप,

माला-स्मरण, तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, व्रत, कर्म-काण्ड आदि शुरु होते गये। लोगों की धर्म में बहुत रुचि और श्रद्धा थी, वे यम-नियमों के पालन के लिए कठोर व्रत लेते थे। ऋषि लोग जंगलों अथवा अरण्यों में रहकर, शास्त्र लिखते, पढ़ते और पढ़ाते थे। राजा लोग भी धर्माचार्यों का मान करते थे।

इसी काल में वर्ण-आश्रम के विभाग ने रूप लिया और जाति-पांति तथा भेद-भाव शुरु हुए। धीरे-धीरे अनेक धार्मिक सम्प्रदाय बनते गये और लोगों में मतभेद शुरु हो गए तथा उग्र रूप लेने लगे। देश कई राज्यों में बंटता गया। समयान्तर में इन्द्रिय संयम टुटने लगा। रोग, शोक, जरा-मृत्यु, दु:ख और अशान्ति डेरे डालने लगे।

इब्राहिम के इस्लाम धर्म के स्थापन करने के लगभग 250 वर्ष बाद बुद्ध ने आकर बौद्ध धर्म की स्थापना की। इसके लगभग 250 वर्ष बाद ईसा मसीह (क्राईस्ट) आये। उन्होंने ईसाई (क्रिश्चियन) धर्म की स्थापना की। उसके लगभग 500 वर्ष बाद शंकराचार्य आये; उन्होंने कर्म-संन्यास घराने की स्थापना की । उनके लगभग सौ वर्ष बाद मोहम्मद साहब ने आकर मुस्लिम घराने की स्थापना की। इस प्रकार अनेक धर्म-संस्थापकों द्वारा अनेक धर्मों की स्थापना हुई। तब अनेक धर्म-स्थापकों और देवी-देवताओं की भी पूजा शुरू हो गयी। इन धर्म-स्थापकों को दूसरे शब्दों में 'पैगम्बर' भी कहा जाता है। इस प्रकार से ये धर्म-स्थापक परमात्मा का अपने-अपने ढंग से परिचय देते हैं लेकिन कोई भी गति व सद्गति के रास्ते पर नहीं ले जा सकता क्योंकि सद्गति-दाता तो एक परमात्मा ही है। अत: इतने धर्म-स्थापकों के आने के पश्चात् भी सारी सृष्टि फिर भी गिरावट की ओर हीं आती गयी और द्वापर के अन्त में भक्ति रजोगुणी अवस्था से गिर कर तमोंगुणी अवस्था को प्राप्त हो गयी। तब पवित्रता की कलाएं भी अति क्षीण हो गयीं। द्वापर युग की आयु भी 1250 वर्ष होती है।

द्वापर युग के अन्त और कलियुग के आदि में देवताओं की भक्ति होने के अतिरिक्त प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों की भी पूजा होनी शुरु हो जाती है और भ्रष्टाचार, पापाचार, अन्धकार बढ़ता ही जाता है। उस समय अनेक समाज उत्पन्न हो जाते हैं और वे एक-दूसरे के धर्म पर आक्रमण भी करते हैं और धर्म के नाम पर पाप भी करते हैं। लोग परमपिता परमात्मा की इतनी ग्लानी करने लगते हैं कि वे कहने लगते हैं कि कुत्ते, बिल्ली, जल, पेड़, ठिक्कर-पत्थर सब में परमात्मा है! तब अपने आप को भगवान व 'शिवोहम' कहकर के उससे बिल्कुल विमुख कर देते हैं।

इस युग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईष्या, द्वेष, निन्दा, आलस्य, लड़ाई-झगड़े बढ़ते गये। राजा लोग एक-दूसरे पर आक्रमण करके दूसरों के राज्य को हड़पने लगे। वस्तुओं का मूल्य धीरे-धीरे बढ़ता गया। लोगों में स्नेह का स्थान मोह ने लेना शुरु किया । जाति-पांति की जंजीरें कड़ी होती गयी। मर्यादाएं टूटने लगीं। नियम ढीले होने लगे। राजा लोग ऐश-इशरत और रंग-रलियों में रहने लगे और उनके आचरण को वासना तथा विकारों का घुन खाने लगा। इसलिए धीरे-धीरे लोग राज-सत्ता के विरुद्ध होते गये। लोगों में आचरण की श्रेष्ठता मिटने लगी और उसके स्थान पर कर्मकाण्ड तथा ब्राह्मणों द्वारा पूजन आदि के विधि ज़्यादा प्रचलित होती गयी। रस्म रिवाज पेचीदा और खर्चीले होते गये। समयान्तर में लोग धर्माचार्यों से भी तंग आने लगे। इस प्रकार धर्म सत्ता और राज-सत्ता, जो दोनों अलग हो गये थे, का नैतिक प्रभाव समाज पर कम होता गया।

कलियुग झूठ फरेब और तमोगुण का युग है। जैसे-जैसे समय बीतता है लोग अधिकाधिक पतित होते जाते हैं। वे सच्चे मन से, अनन्य भाव से अपने इष्ट की भक्ति नहीं करते। मनुष्य का स्वभाव चंचल हो जाता है। आश्रम व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। मानों केवल एक विकार-युक्त गृहस्थ ही शेष रह जाता

है क्योंकि 'ब्रह्मचर्याश्रम' को भी वे ठीक रीति से नहीं निभाते बल्कि उनकी दृष्टि, वृत्ति और कृति दूषित हो जाती है। वे आरती करते हुए भगवान से प्रार्थना तो करते है कि विषय-विकार मिटाओं परन्तु वे स्वयं विकारों को मिटाने का प्रयत्न नहीं करते, न ही मन से वासना आदि को छोड़ने की सच्ची कामना ही करते है, बल्कि वासनामय तथा विकारी जीवन को ही स्वाभाविक मानने लगते हैं। वे काम, क्रोध और लोभ को 'नरक का द्वार' मानते हुए भी प्रतिदिन उसमें से गुजरते हैं। साधु चोले को भी बदनाम करने वाले साधु बहुत होते हैं। भक्ति और पूजा के नाम पर प्राय: ब्राह्मण तथा पण्डे और पुजारी धनोपार्जन के लोभ में पड़ जाते हैं। लोग उनके चरित्र-बल तथा उनकी आध्यात्मिक स्थिति से प्रेरणा नहीं ले सकते ।

राजकारोबार में कूटनीति और छल-बल का प्रचुर प्रयोग होने लगता है। युद्ध के नियमों को भी तोड़ा जाता है। राजा लोग अपनी विलासिता के लिए प्रजा का खून चूसते तथा कन्याओं-माताओं पर कुदृष्टि रखते; सैन्य बल और सत्ता के नशे में चूर तथा सुरा-सुन्दरी की दलदल में फंस जाते हैं।

जैसे-जैसे कलियुग के चरण बढ़ते हैं, वैसे-वैसे लोगों में धार्मिक संकीर्णता, वाद-विवाद, कलह-क्लेश, नास्तिकता आदि बढ़ते हैं। लोग अधिकाधिक देह-अभिमानी बनते जाते हैं। उनके जीवन में अशान्ति और दु:ख बढ़ते जाते हैं और कलियुग का अन्तिम चरण आने पर अत्याचार, अनाचार, पापाचार, भ्रष्टाचार तथा विकार के कारण त्राहि-त्राहि मच जाती है।

कलि के अन्तिम चरण में ऐसी स्थिति होती है कि कन्या अपने मुंह वर मांगने लगती है, आकाश से अग्नि वर्षा करने वाले बम तैयार कर लिए जाते हैं। सभी वर्ण एक प्रकार से शूद्र वर्ण ही हो जाते क्योंकि वे आसुरी लक्षण वाले तथा विकारी बन जाते है; अनाज पुड़ियों में और दूध बोतलों में बिकने लगता है, जन-

संख्या इतनी बढ़ जाती है कि हर जगह भीड़ दिखाई देती है, गाय कचड़े में मुख मारने लगती है, नर-नारियों में रोग बढ़ जाते हैं और उनकी आयु छोटी हो जाती है। **अब जो वर्तमान समय चल रहा है, वह ऐसा ही समय है। वह कलियुग का अन्तिम चरण ही है।**

इस प्रकार यह कहानी 5,000 वर्ष के पश्चात् पुनरावृत्त होती है। अब सचमुच वही कलियुग का अन्तिम चरण चल रहा है। जब ऐसा समय आता है तब कर्म-संन्यास धर्म वाले सन्यासी लोग अल्पज्ञ होते हुए भी 'श्री श्री 108 जगत्गुरु' की ईश्वरीय उपाधि का अपने नाम के साथ प्रयोग करने लगते हैं। इस समय 'रावण' अर्थात् माया (पाँचों विकारों) का पूर्ण प्रभाव अथवा राज्य होता है।

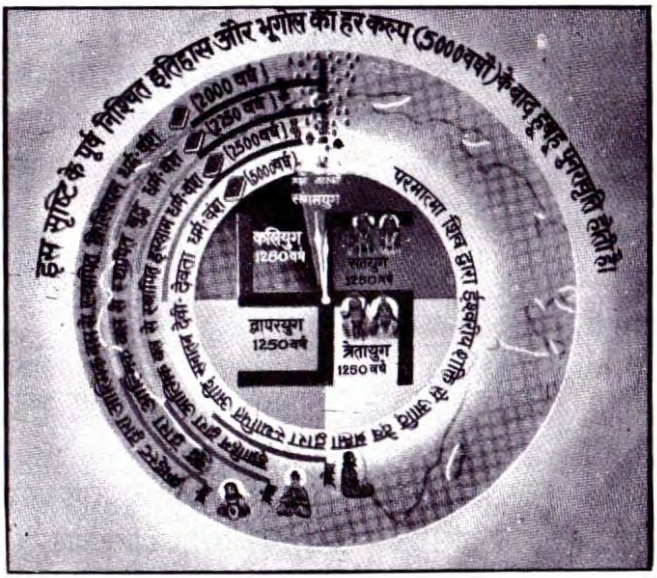

(चित्र में मनुष्य-सृष्टि के इस इतिहास चक्र में सतयुग के आरम्भ से लेकर कलियुग के अन्त और फिर 'संगमयुग' में परमात्मा के अवतरण का वृत्त अंकित है।)

मनुष्यात्मा पाँचों विकारों में बुरी तरह से फंसी होती है। भाई-भाई का खून करता है। माँ-बहनों की लाज लूटी जाती है। अबलाओं पर अत्याचार किये जाते हैं। भ्रष्टाचार बढ़ता है। चोर बाजारी होती है। अकाले मृत्यु होती है। अकाल पड़ता है। भुखमरी फैलती है। भूकम्प और तूफान आते हैं तथा अति वर्षा होती है। अनेक प्रकार के रोग आते हैं। हर तरफ अशान्ति वा अधर्म का राज्य छा जाता है। उस समय मनुष्यात्माएं बहुत दु:खी होती हैं और परमपिता परमात्मा को अपनी अपनी मान्यता के अनुसार पुकारती हैं। अपने बच्चों की उस पुकार को सुनकर पतित-पावन परमापिता परमात्मा शिव गीता में लिखे अपने वचन के अनुसार उस कलियुगी, आसुरी सम्पदा वाली सृष्टि पर दिव्य रीति से अवतरित होते हैं।

परमपिता परमात्मा शिव अजन्मा और अभोक्ता हैं और सब आत्माओं के माता-पिता हैं, इसलिए इस सृष्टि पर उनका जन्म मनुष्य या देवताओं की तरह गर्भ से नहीं होता बल्कि वे तो एक साधारण बूढ़े और अनुभवी मनुष्य के तन में प्रवेश करते हैं। यही उनका '**दिव्य जन्म**' कहलाता है। जिस साधारण एवं वृद्ध मनुष्य के शरीर में वे प्रवेश करते हैं, परमात्मा उनका नाम अब 'प्रजापिता ब्रह्मा' रखते हैं। वह प्रजापिता ब्रह्मा ही बूढ़ा ब्राह्मण है जिसको वे पहले सत्य नारायण की सच्ची कथा सुनाते हैं और सत्यनारायण व्रत (पूर्ण पवित्रता का व्रत) रखने के लिए कहते हैं। पवित्रता रूपी सत्य व्रत धारण करने के कारण ही श्री नारायण पद के बाद 83 जन्म ले फिर 84 वें जन्म में निर्धन भारत में एक ब्राह्मण के रूप में जन्म लेने वाला यही वह ब्राह्मण है जिसके बारे में आज प्रचलित सत्यनारायण व्रत कथा में उल्लेख है। उसी वृद्ध प्रजापिता ब्रह्मा रूपी ब्राह्मण के तन में अवतरित होने के कारण ही गायन भी है कि – 'बूढ़ा ब्राह्मण बन के कंचन महल कियो' । क्योंकि उसी साकार माध्यम द्वारा ही वे कंगाल भारत को कंचन के महलों वाला, सतयुगी पावन भारत अथवा स्वर्ग बना देते उसी रूप में ही भीलों के समान प्राय:

निर्धन बने भारत को परमपिता शिव धनवान बना देते हैं और व्यापारियों के भी डूबे हुए जीवन रूपी बेड़े को निकाल पार उतारते हैं। सभी को वे 84 जन्मों की यह आत्मा की कथा तथा सत्य (परमात्मा) और श्री नारायण की कथा सुनाकर उन्हें पतित से पावन बनाते हैं और मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति का भागी बनाते हैं। परन्तु श्री नारायण की 84 जन्मों की इस सारी कथा का तथा सत्य स्वरूप परमात्मा शिव की जीवन-कथा तथा पवित्रता रूपी सच्चे व्रत का ज्ञान प्राय: लोप हो जाने के कारण आज केवल 'व्रत-कथा' अर्थात् व्रत ही की महिमा शेष रह गयी है।

यह कथा प्राय: लुप्त

आज 'सत्य नारायण' की कथा उपलब्ध नहीं है। अब तक अनेकानेक लोगों ने सत्यनारायण कथा को ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया है परन्तु कोई भी व्यक्ति इस प्रयोजन को सिद्ध नहीं कर सका।[1] कुछ लोगों का मन्तव्य है कि जिस पुराण में पहले यह व्रत कथा थी, अब वह पुराण ही नहीं मिलता।[2] इस का भाव हुआ कि 'सत्यनारायण की कथा' वास्तव में प्राय: लुप्त है। ऐसी अवस्था में अब इस कथा का, जिसके माहात्म्य में कहा गया है कि यह मुक्ति और

---

1. गीता प्रेस, गोरखपुर, ने कई वर्ष पूर्व में स्कन्द पुराण का जो हिन्दी अनुवाद छापा था, उसमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि स्कन्द पुराण की मूल पोथी में यह कथा नहीं मिलती।
2. नई दिल्ली से छपने वाली मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' के मई 1970 के अंक में पृष्ठ 18-21 पर एक विद्वान का लेख –'**सत्य नारायण कथा: एक शोध**' शीर्षक से छपा था। उक्त लेखकों सन् 1915 से ही इस कथा की खोज में लगे रहे और इसके लिए उन्होंने सभी पुराण भी पढ़े। उन्होंने लिखा कि उन्हें कोंकण में एक अत्यन्त जीर्ण पोथी देखने को मिली। उस पोथी में प्रत्येक अध्याय के अन्त में स्कन्न पुराणे, पूर्व खण्डे' – ऐसा समाप्ति वाक्य लिखा हुआ था। उनका कथन

वैकुण्ठ का सुख देने वाली है, यथा-सत्य रूप में कौन ज्ञान दे सकता है? निश्चय ही जन्म-मरण में आने वाला कोई भी विस्मृतिशील मनुष्य इसके रहस्य का उद्‌घाटन नहीं कर सकता बल्कि नर को श्री नारायण बनाने वाले जो सत्य-स्वरूप परमात्मा हैं, केवल वे ही इसका पुन: ज्ञान दे सकते हैं। वे ही पुन: सच्चे व्रत के पालन की शिक्षा देकर मनुष्य को देवता अथवा नर को श्री नारायण बनने का पुरुषार्थ सिखा सकते हैं। अत: मालूम रहे कि पूर्व पृष्ठों में, सतयुग के आरम्भ से लेकर कलियुग के अन्त तक की जो संक्षिप्त सृष्टि-कथा दी गई है और कलियुग के अन्त में सत्य-स्वरूप परमात्मा शिव के पुन: अवतरण का जो वृत्तान्त सार रूप में बताया गया हैं, वह स्वयं भगवान द्वारा सुनाई गई इस कथा पर आधारित है। उन्होंने ही प्रजापिता ब्रह्मा के मुख द्वारा वर्तमान संधिकाल में इसका बोध कराया है।

यदि लेखक के उपरोक्त स्पष्टीकरण को यहाँ मान लिया जाय तो भी इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आज वह पुराण जिसमें यह कथा थी, उपलब्ध नहीं है। पुनश्च, आज जो कथा मिलती भी है, वह भी तो 'व्रत कथा' ही है; वह भी 'सत्य नारायण की कथा' नहीं है।

इस कथा द्वारा सर्व सुखों की प्राप्ति कैसे?

अब प्रश्न उठता है कि पूर्व-पृष्ठों में चारों अथवा पाँचों युगों में मनुष्यत्मा के जन्म-पुनर्जन्म की तथा परमपिता परमात्मा के अवतरण की जिस कथा का

है कि 'स्कन्न' शब्द का अर्थ है –''खोया हुआ, जिस के मिलने की आशा न रही हो, नष्ट हो गया हो।'' लेखक ने उक्त लेख में कहा है कि उनका विचार है कि यह 'स्कन्न पुराणे, पूर्व खण्डे' ही आगे चलकर मुद्रणालय में शब्द जोड़ने वाले (कम्पोजिटर) की भूल से 'स्कन्द पुराणे रेवा खण्डे' – इस प्रकार छप गया, यद्यपि स्कन्द पुराण में ऐसी कोई कथा है ही नहीं।

उल्लेख किया गया है, उससे मनुष्य को शान्ति की तथा सर्व सुखों की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

इसका उत्तर जानने के लिए ध्यान देने के योग्य बात यह है कि इससे मनुष्यात्मा को यह स्मृति पुन: उपलब्ध होती है कि –''मैं आत्मा सतयुग में देवपद को प्राप्त थी। श्री लक्ष्मी और श्री नारायण के राज्य काल में सतोप्रधान अवस्था में मैं पूर्णत: पवित्र, सर्व दैवी गुणों से युक्त तथा जीवन्मुक्त थी। फिर त्रेतायुग में दिव्यता की दो कलाएं कम हुई और द्वापर युग से धीरे-धीरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि के वशीभूत होते -होते अब मैं पतन की वर्तमान सीमा को पहुँची हूँ। मेरी यह सब अवस्था देह-अभिमान ही के कारण हुई हैं क्योंकि देह-अभिमान से ही राग-द्वेष आदि सभी विकार पैदा होते हैं। अब सारे संसार की तमोप्रधान एवं पतन की अवस्था है। इस अवस्था से निकालने और पुन: नर से श्री नारायण अथवा मनुष्य से देवता बनाने अथवा तमोप्रधान कलियुग की जगह सतोप्रधान सतयुग की पुन: स्थापना करने, अब परमपिता परमात्मा शिव, प्रजापिता ब्रह्मा के तन में आये हैं। वे अब मेरे ही कल्याण के लिए – पवित्र और योग-युक्त बनने के लिए कहते हैं। अत: अब मुझे पुन: पवित्रता रूप व्रत लेना चाहिए और ज्ञान रूप प्रसाद प्राप्त करना चाहिए तथा योग-युक्त होना चाहिए। इसके लिए अब मुझे अवहेलना या देर नहीं करनी चाहिए वरना अभी कुछ काल के बाद सभी धन-धान्य लता-तृण ही हो जाने वाले हैं और पापमय संसार का बेड़ा डूब जाने वाला है क्योंकि पाप मन वाले मनुष्यों ने अपने ही हाथों अपने मानव-वंश का महाविनाश करने के लिए एटम और हाईड्रोजन बम, लेसर हथियार तथा अन्यान्य महाघातक अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण कर लिया है।''

इस प्रकार स्मृति लाभ होने से मनुष्यात्मा पुन:स्वरूप में स्थित होने, परमपिता परमात्मा शिव से अनन्य प्रीति जोड़ने, जितेन्द्रिय बनने, ज्ञान-प्रसाद प्राप्त करने

तथा आहार-व्यवहार आदि की शुद्धि का व्रत लेने का पुरुषार्थ करेगी और इस उत्तम पुरुषार्थ का फल तो निश्चय रूप से पूर्व विकर्मो का दग्ध होना, वर्तमान जीवन में पूर्ण शान्ति तथा योग का आनन्द प्राप्त करना तथा भविष्य में मुक्ति एवं जीवन्मुक्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त करना ही है। यही कारण है कि आज भी सत्य नारायण व्रत कथा करने वाले आमोद-प्रमोद करते और खुशी से गाते-नाचते हैं।, यह इस बात की प्रतीक है कि सत्यनारायण की सच्ची कथा सुनने वाले मन-वचन-कर्म से शुद्ध एवं सत्य बनते हैं अथवा नारायण के समान कमल मुख, कमल नेत्र, कमल हस्त बनने का पुरुषार्थ करते हैं और ऐसे लोगों के लिए तो संसार में हर्ष और खुशी ही है।

नर से श्री नारायण बनने का व्रत

हम देखते हैं कि मन्दिरों में श्री लक्ष्मी और श्री नारायण की जो मूर्तियां है, उनके सामने जाकर भक्त-जन इन शब्दों से अपने उद्‌गार व्यक्त करते हैं –''आप सर्वगुण सम्पन्न और 16 कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी, मर्यादा पुरुषोत्तम और अहिंसा धर्म वाले हैं...।'' ऐसा कहते हुए भी शायद ही किसी के मन में यह चिन्तन चलता होगा कि 'श्री लक्ष्मी और श्री नारायण भी तो हमारी तरह ही दो आंख, दो कान, दो पाँव वाले हैं, परन्तु वे पूज्य हैं और हम पुजारी; ऐसा अन्तर क्यों हैं? यदि मनुष्य इस प्रश्न पर विचार करे तो वह अवश्य ही इसी निश्चय पर पहुँचेगा कि नर और नारायण में मुख्य अन्तर यही है कि नारायण सर्वगुण सम्पन्न और सम्पूर्ण निर्विकारी हैं परन्तु आज नर आसुरी गुण सम्पन्न और विकारी है। अत: अब आवश्यकता इस बात की है कि नर स्वयं में सब दैवी गुण धारण करे और सम्पूर्ण निर्विकारी बनने का पुरुषार्थ करे अर्थात् पतित से पावन एवं पुजारी से पूज्य बनने का यत्न करे। परन्तु आज हम देखते हैं कि मनुष्य मन्दिर में जाकर श्री

नारायण की महिमा करने के बाद अपने बारे में यही कहने से ढाढस अनुभव करता है कि हे नाथ – मैं नीच हूँ, विकारी हूँ, पतित हूँ, अशान्त हूँ, आपका दास हूँ। हे नाथ – मुझ पर कृपा करो।'' अब सत्य स्वरूप परमपिता परमात्मा कहते हैं कि ''हे वत्स, पहले आप ही अपने ऊपर यह कृपा करो कि निर्विकारी बनो।''

अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य निर्विकारी कैसे बने अथवा वह नर से श्री नारायण पद कैसे प्राप्त करे? उसकी दृष्टि और वृत्ति कैसे पवित्र हो? उसका जीवन कमल फूल के समान पूर्ण कलाओं के सहित प्रकाशमान कैसे बने? इसके लिए ज़रूरी है कि हमने सतयुग के आरम्भ से लेकर कलियुग के अंत तक की सत्यनारायण की जो कथा इस पुस्तक के पृष्ठ 17 से 30 तक लिखी है, उसका वह पुन: स्मरण अपने मन में करता रहे, अर्थात् उसके मन में यह चिन्तन चलता रहे – ''मैं सतयुग में सर्वगुण सम्पन्न, 16 कला सम्पूर्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम, अहिंसा धर्मवाला सूर्यवंशी देवता था। फिर त्रेतायुग में मैं 14 कला दिव्य गुण सम्पन्न था और पूर्ण निर्विकारी था। द्वापर युग से ही मैं देहाभिमानी बना, पूज्य से पुजारी हुआ और निर्विकारी से विकारी बना। तब मेरी केवल 8 कलायें थीं। उनके क्षीण होते-होते अब कलियुग के इस अन्त में मैं विकारी बना। अब मुझ ज्योतिस्वरूप आत्मा को पुन: पावन और सर्वगुण सम्पन्न बनना है। अब कलियुग जा रहा है और सतयुग आ रहा है।''